UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182317

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—43—30-1-71—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 P18R Accession No. Po Gr H1530

Author पाण्डेय, रामनरेश 'पद्मेश'

Title रश्मिरेखा

This book should be returned on or before the date last marked below.

रश्मि-रेखा

राम नरेश पाण्डेय 'पद्मेश'

लखनऊ

प्रकाशक
रामनरेश पाण्डेय 'पद्मेश'
नैशनल इण्टर कालेज, लखनऊ।

सर्वाधिकार स्वरक्षित

मूल्य ५)

मुद्रक
जनता प्रेस,
५ शाहनजफ रोड,
लखनऊ।

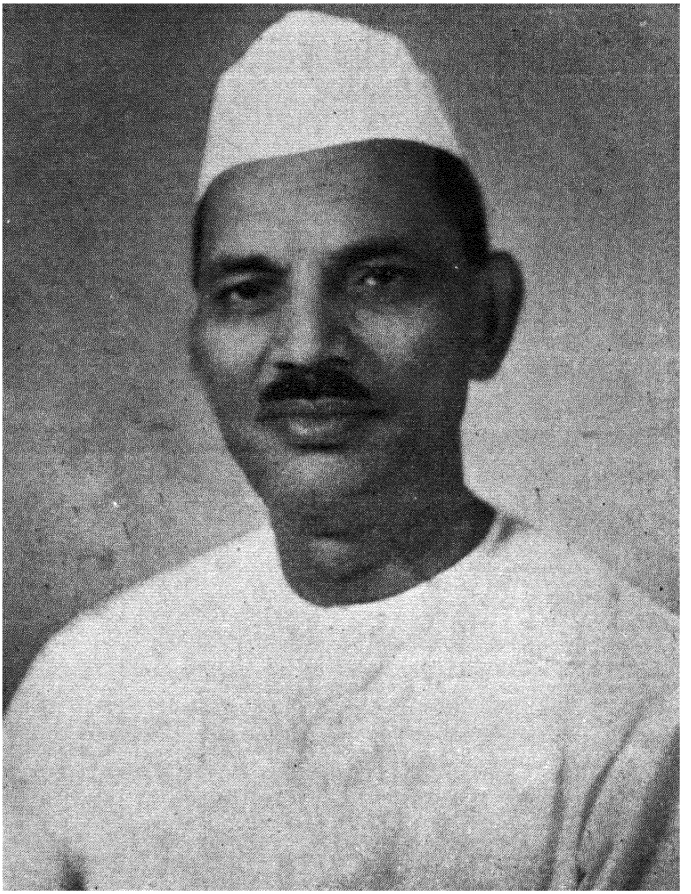

पं० श्री नारायण तिवारी
प्रिंसिपल नैशनल इन्टर कालेज लखनऊ

समर्पण

—: ☺ :—

जिनके जीवन की पवित्रता और आदर्शवादिता ने
मुझे सत्प्रेरणा और प्रकाश दिया उन्हीं
पं० श्रीनारायण तिवारी
के कर कमलों
में
सादर समर्पित

—: ० * ० :—

सम्मतियाँ

राष्ट्र-कवि डा० मैथिली शरण गुप्त, झाँसी

'रश्मि-रेखा' सुन्दर लगती है। पुराने छन्द नया प्रभाव प्रकट करते दिखाई देते हैं।

आचार्य प्रवर कवि-सम्राट् 'सनेही' जी, कानपुरे

श्री 'पद्मेश' जी एक सिद्ध हस्त कवि हैं। सवैया और घनाक्षरी छन्दों में आपने नवीन भाव लिखे हैं। इस प्रकार आपने प्राचीन बोतलों में जो नवीन भाव-सुरा भरी है, उसकी मनो-मोहक मादकता में न्यूनता नहीं आयी वरन् वह और भी हृदय-हारिणी हो उठी है। जो लोग नवीन भावों के लिखने के लिये केवल अन्य छन्दों को ही उपयुक्त समझते हैं, उन्हें 'रश्मि-रेखा' देखकर अपना भ्रम संशोधन करना चाहिये। मैं कवि को उसकी सफलता पर बधाई देता हूँ। आपकी भाषा सरस, सुबोध और परिमार्जित है और इस प्रकार कह सकते हैं– 'सोनो औ सुगंध तोमें दोनों देखियतु है'।

सा० महारथी 'माधुरी' संपादक पं० रूपनारायण पाण्डेय, लखनऊ

पं० रामनरेश पाण्डेय 'पद्मेश' की 'रश्मि–रेखा' मैंने पढ़ी। निस्संदेह 'पद्मेश' जी की लेखनी ने जो शब्द-चित्र अंकित किये हैं, वे सब सुन्दर हैं। भाषा का प्रवाह कानों में रस बरसाने वाला है। भावों की अभिव्यक्ति भी बहुत अच्छी हुई है। स्पष्ट व्यञ्जना और प्रसाद गुण के कारण ये कवितायें अवश्य ही काव्यामोदी सहृदय रसिकों को आनन्द देंगी। मैं इस सफलता के लिये कवि को बधाई देता हूँ।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र एम० ए० प्राध्यापक विश्व-विद्यालय, काशी

श्री 'पद्मेश' जी की 'रश्मि-रेखा' उलट पलट गया। हिन्दी में कवित्त, सवैया-छन्दों को खड़ी बोली में प्रयुक्त करने वाला एक शक्तिशाली दल है और भाषा पर उसका अच्छा अधिकार है। 'पद्मेश' जी की रचना में भाषा का प्रवाह है और समर्थ शैली का प्रयोग। पुस्तक मुझे आकर्षक लगी।

डा० भगीरथ मिश्र एम ए० पी० एच-डी० विश्व-विद्यालय, लखनऊ

श्री राम नरेश पाण्डेय 'पद्मेश' की कृति 'रश्मि-रेखा' पढ़ी। सवैया और घनाक्षरी वृत्तोंमें बँधे हुए ललित प्रवाह वाली पंक्तियाँ एक उदीयमान कवि प्रतिभा की द्योतक हैं। जहां भी कवि समाधिस्थ और तन्मय हो पाया है, वहाँ छन्द बड़े ही सुन्दर और स्मरणीय बन पड़े हैं। कुछ कविताएँ जैसे 'सरिता' 'गंगा जी और खादी' 'प्रभात प्रकाश' आदि काव्य रचना के सुन्दर उदाहरण हैं।

वर्तमान भूषण महाकवि अनूप शर्मा एम० ए० एल० टी०

'रश्मि रेखा' प्राप्त हुई। सांस्कृतिक कविता में आपका अधिक विश्वास प्रशंसनीय है। आपकी शब्दावली ललित तथा भाव शैली संतुलित है। पुस्तक देखकर प्रसन्नता हुई। धन्यवाद।

डा० देवराज एम० ए० डी-फिल० विश्व-विद्यालय, लखनऊ

श्री 'पद्मेश' जी कृत 'रश्मि-रेखा' पढ़ी। कवि में निसर्ग सिद्ध काव्य प्रेरणा और आधुनिकता की ओर प्रगति भी। उनके भविष्य के प्रति आस्था होती है।

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार महाकवि भगवतीचरण वर्मा

श्री रामनरेश पाण्डेय 'पद्मेश' एक उत्साही कवि हैं। 'रश्मि-रेखा' इनकी कविताओं का प्रथम संग्रह है। भावों में आधुनिकता की छाप है तथा कविताएँ निर्दोष और साफ-सुथरी हैं। श्री 'पद्मेश' जी में प्रतिभा है, उनके साथ मेरी समस्त शुभ कामनाएँ हैं।

रश्मि-रेखा

के

कवि श्री 'पद्मेश' जी अपनी प्रतिभा से चिरपुराण साहित्य में नवीनता लाकर साहित्य मनीषियों के सम्मुख प्यार और सत्कार के पात्र बन गये।

खड़ी बोली के इस तरुण युग में स्वच्छन्द छन्द एवं गीत की नवीन शैली से परे, कवि ने जिस प्रणाली को अपनाया है उसमें पर्याप्त सफलता पायी है। 'पद्मेश' जी के सरस हृदय की अभिव्यक्ति गुरुचरणों से शत शत साधुवादों की अधिकारिणी है। पुरानी प्रणाली में नवीन भाव, नई भाषा और इच्छित रस के उद्रेक को सँजोने में वे पूर्ण रूप से सफल हुये हैं।

कवि की रचना को पढ़कर हृदय में जो आनन्द उद्भूत होता है वह अनुभव की वस्तु है, वर्णनीय नहीं। प्रकृति के सदृश मानव जीवन में कवि काव्य, संगीत एवं सौन्दर्य देखता है। चर्म चक्षुओं की पहुँच से परे वह जिस सत्य को देखता और परखता है उसे प्रत्यक्ष करके दिखाने का प्रयास करता है। 'रश्मि-रेखा' की सुमनोक्ति, सरिता, गंगाजी और खादी, स्त्री-स्तव एवं अनेक दार्शनिक रचनायें इस कथन की प्रतीक हैं। कौन रत्न कहां सँजोया है, कौन वैदूर्य कहां पिरोया है, यही देखना पारखी का चातुर्य है।

'रश्मि रेखा' के कवि ने जीवन प्रभात में उल्लसित उर की किलोल को दबाया नहीं, उससे काव्य में भावोद्रेक और रस की मन्दाकिनी बहती पाई जाती है। उसमें सरस संगीत सुनाई देता है। "मणिमय मन्दिरे पश्यति पिपीलिका छिद्रम्" से बचकर यदि रस और रचना की मनोज्ञता को देखें तो 'रश्मि रेखा' के कवि में कमनीय कल्पना और उर्वर मस्तिष्क की सुन्दर सूझ मिलेगी। आनन्द का प्रकाश दिखाई देगा। उसमें कला है। रस है।

'रश्मि-रेखा' की अनेक पंक्तियाँ बहुत मात्र गम्य रोचक और स्मरणीय हैं।

मैं 'कण' से 'पदमेश' न होता,
(यदि)
हुई पद में अनुरक्ति न होती।

में गुरु के प्रति कितना विनम्र भाव और अटल श्रद्धा है।

कर में न अनन्त प्रकाश सका-
(परन्तु)
बुझने का मुझे अनुताप नहीं
उजियार में मेरी जवानी गई।

की कसक बहुत ही मार्मिक है।

"दलता नित दीन पतंगों को तू
स्वयं बंधन में जकड़ा हुआ है"
(और)
"यह तेरा प्रकाश नहीं है प्रदीप
पतंगों की जीवन-ज्वाला जली"

इन पक्तियों में परिताप का कितना मृदुल आघात है, जीवन का तथ्य समीक्षकों के लिए उपस्थित है।

इस प्रकार 'रश्मि-रेखा' में संकलित सभी रचनायें अपना २ स्थान रखती हैं। 'विधवा-विलाप' शीर्षक कवित में जीवन का भावमय काव्य है। इसमें वियोग-विभूति है, भाव योग है, आत्मोत्सर्ग है। नैराश्य, शान्ति, पीड़ा लिए मिठास और चिन्तन सब कुछ प्राप्य है।

कई स्थलों पर इतना सरल वर्णन है कि कवि का साधारण कथन ही काव्य सौन्दर्य की सृष्टि कर बैठा है। मैं 'पद्मेश' जी को उनकी इस सफलता पर बधाई देता हूँ।

विधान भवन, लखनऊ। — कमल साहित्यालंकार

नम्र निवेदन

छपने की शीघ्रता के कारण पुस्तक में अनेक प्रकार की अशुद्धियाँ रह गई हैं जिनको अगले संस्करण में सुधार दिया जायगा। पाठकगण इसके लिये क्षमा करेंगे।

—प्रकाशक

सूची पत्र

१	गुरु-गौरव	१
२	सुमनोक्ति	४
३	सरिता	६
४	वसंतागमन	१३
५	गंगाजी और खादी	१८
६	दीपकोक्ति	२१
७	महात्मा गांधी	२४
८	महात्मा तुलसीदास	२६
९	चौरी चौरा	२९
१०	दीपक !	३३
११	प्रभात-प्रकाश	३५
१२	पपीहा-पुकार	३८
१३	स्त्री-स्तव	४२
१४	भिखारी	४६
१५	दीपकोद्गार	५०
१६	घन श्याम !	५३
१७	विधवा-विलाप	५७
१८	दीपक !	६१
१९	पपीहा !	४६
२०	आँखें	६६
२१	परिचय	७०
२२	सुमन !	७१
२३	दीपक !	७२
२४	दीपावली !	७३
२५	अप्सरा-अवतरण	७४
२६	आशीर्वाद	७५
२७	तिमिर-ज्योति	७६
२८	प्रेम-परिभाषा	७७
२९	आत्म निवेदन	७८
३०	मुक्ति-साधन	७९
३१	मेरे दयाकर !	८०
३२	पुनरावर्तन	८१
३३	प्रत्यावर्तन	८२
३४	वैषम्य (साम्य)	८४
३५	संकेत	८६
३६	अहम् !	८७
३७	मृगतृष्णा	८८
३८	?	८९
३९	मुक्ति-महत्व	९१
४०	ब्रह्म-दर्शन	९२
४१	वास्तविकता	९३
४२	उपदेशामृत	९४
४३	वियोग-विभूति	९५
४४	मनोभिलाषा	९६
४५	भूल	९७
४६	मेरी पिपासा	९८
४७	ज्ञान-प्रकाश	९९
४८	पश्चात्ताप	१००
४९	तुम !	१०२
५०	व्यर्थ अभिमान	१०४
५१	मुक्ति-क्षति	१०५
५२	नम्रनिवेदन	१०६
५३	अन्तर	१०८
५४	मृत्यु-अभिलाषा	१०९
५५	मैं	११०
५६	वैपरीत्य-साम्य	१११
५७	यदि !	११२

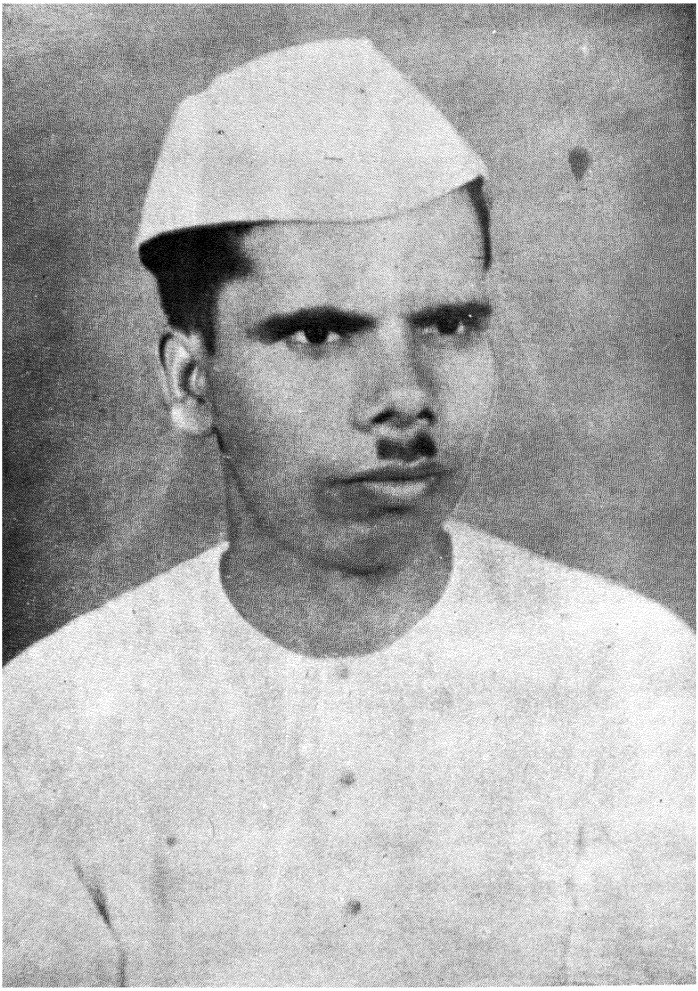

कवि

गुरु-गौरव

प्रतिभा में विकास न होता कभी,
कण में महाज्योति-समत्व न होता।
हुआ लुण्ठित होता न मैं पद पे,
पद मेरा कभी अमरत्व न होता।

यदि स्वर्ण सुधार का पाता न मैं,
फिर तो मुझमें कुछ तत्त्व न होता।
चरणामृत पान न मैं करता,
कुछ भी कहीं मेरा महत्त्व न होता॥

[२]

कलाकार कभी बन पाता न मैं,
अपनी कला पे अभिमान न होता।
कविता की बजाने में बीन प्रवीन—
न होता, मिला बरदान न होता।

ध्वनि श्वासों में होती भरी न असीम की,
साधना का सु-विधान न होता।
गुरु गौरवी का गुण-गान न होता,
बना इतना मैं महान न होता॥

[३]

मिली मृत्यु के बाद भी जीवन के—
वरदान की अद्भुत सिद्धि न होती।
फिर मैं 'पदमेश' कहाँ बन पाता-
कला-किरणों में समृद्धि न होती।

पद की रज की महाभस्म मिली यदि-
होती न, बुद्धि में वृद्धि न होती।
कविता-महादेवी की सिद्धि न होती,
कहीं कुछ मेरी प्रसिद्धि न होती॥

[४]

मैं कण से 'पदमेश' न होता,
हुई पद में अनुरक्ति न होती ।
होता महान कलाधर मैं कहां,
ऐसी कवित्व की शक्ति न होती ।

विस्तृत ज्ञान का कोष न होता,
लिखी गई काव्य की पंक्ति न होती ।
होकर पूत सपूत न होता,
मिली वरदान में भक्ति न होती ॥

[५]

अभिव्यक्ति न जीवन की कर पाता,
कला-गढ़ का मैं विजेता न होता ।
फिर दृश्य अलौकिक देखता विश्व—
कहाँ से, बना अभिनेता न होता ।

गुरु के पद-पद्म-पराग विभूति का—
चन्दन मैं यदि देता न होता ।
यश-सौरभ काव्य प्रसूनों से—
क्यों उड़ता, बना ग्रन्थ-प्रणेता न होता ॥

सुमनोक्ति

सौरभ के श्वास हम लेते थे सुखद सदा,
चन्द्र—रश्मियों का रस--पान करते रहे।
रूप के प्रकाश से बने थे बाटिका-प्रदीप,
अलि हो पतंग प्राण—दान करते रहे।
ललित लतायें निज अंचल ओढ़ाये रहीं,
सुरभित हम परिधान करते रहे।
देवों—शिर बैठ हम फूले न समाते रहे,
स्वागत हमारा भगवान करते रहे॥

[२]

जगा के निसर्ग नित्य किरण-करों से हमें,
ओस-बिन्दुओं से मुख-मंजुल धुलाता था।
हरी भरी डालों मध्य पल्लवों के पालने थे,
सरस समीर जहाँ स्नेह से झुलाता था।
प्रणयी मिलिन्द थे मनाते मोद मुख चूम,
बाटिका-निवास से न चित्त अकुलाता था।
श्रमहर संध्या के प्रहर मनहर आते,
द्विज—वृन्द बाल-गीत गाकर सुलाता था॥

[३]

सारी निशा अन्तर में बस के मधुप प्रेमी,
प्रणय--पिपासा निज शांत करते रहे।
वय के कली थे पर चारों ओर घूम-घूम,
शिथिल वे स्नेह से नितान्त करते रहे।
अपनी असीम मनुहार का प्रवाह बहा,
मधु-सिक्त मेरा उर-प्रांत करते रहे।
बैठ मम अंक में निशंक मद-मत्त बन,
प्रेम का पियूष पी निशान्त करते रहे॥

[४]

डोलता था डाल पे उड़ाके पंखुरी के पंख,
रंगरलियों में रात-दिन कटता रहा ।
मुग्ध हो प्रफुल्ल मुख मंजुल हमारा देख,
चूमते मिलिन्द कितना भी नटता रहा ।
दीपक हमारे मंजु कुंज—गृह का था चन्द्र,
तम का विषम-तम जाल फटता रहा,
प्रिय-प्रेम-क्रीड़ा का पवित्र दृश्य देख-देख
द्वेष—वश 'पी कहाँ' पपीहा रटता रहा ॥

[५]

'पदमेश,' ऋतु तो वसंत रहती थी सदा,
मिली थी शयन-हेतु वाटिका हरी भरी ।
डाली गयी प्रकृति-करों से डाली-छड़ियों पे,
लोनी लतिकाओं की बनी हुई मसहरी ।
कांटों के असंख्य अस्त्र रक्षा में खड़े थे अड़े,
प्रणयी मिलिन्द रहे वसुयाम प्रहरी ।
शीतल समीर के मधुर स्पर्श करने से,
सारी निशा लगती थी नींद बड़ी गहरी ॥

[६]

रसमय देती थी हमारा कुंज-कक्ष बना,
कोयल सी किन्नरी संगीत—सुधा घोल के।
जागरण-भय से सशंकित समीर बन,
एक-एक पग रखता था तोल-तोल के।
अप्सरा तितलियाँ बिचित्र वस्त्र धारे हुये,
हमें थीं रिझातीं सन्निकट डोल-डोल के।
मानस हमारा प्रियमय कर देता रहा,
'पदमेश' 'पी कहाँ' पपीहा बोल बोल के॥

[७]

हँस हँस खेलता था वायु—अंतरंग संग,
क्रीड़ा-क्षेत्र बना वाटिका के प्रति कोने में।
मेरी भाव-भंगिमा प्रभावशाली जितनी थी,
उतनी थी शक्ति कहाँ जादू और टोने में।
जानते मधुप वृन्द कितना भरा था मधु,
'पदमेश' मेरे अंग सरस—सलोने में।
सौरभ-संयुक्त रूप देख कहते थे सभी,
देखने को मिली है सुगंध यहीं सोने में॥

[८]

किशलय-शय्या पर सोते थे प्रत्येक क्षण,
पल्लवों के व्यजन समोद झले जाते थे।
ऊषा अनुरागिनी पधारती प्रत्येक प्रात,
अंक में बिठाती हम लग गले जाते थे।
बातें आसमान से हमारी सदा होती रहीं,
मेरे छवि-मंत्र से न कौन छले जाते थे।
रूप के विकास पे विमुग्ध हो असंख्य बार,
नम्र-पद भूप आ अनेक चले जाते थे॥

सरिता

प्रणयाग्नि की वेदना से हो वि-लुण्ठित,
मूक किये निज बानी चलीं।
घनश्याम की मानस-पीड़ा-स्वरूपिणी—
हो, करुणार्द्र कहानी चलीं।

घनीभूत हो भूमि के तप्त कणों पर,
हो कर देवी हिमानी चलीं।
किस रूप में रूप मिलाने निमित्त,
बनाकर जीवन पानी चलीं॥

[२]

लहरों के थपेड़ों से मार्ग के पेड़ों का,
जीवन धूल बनाती चलीं ।
भरतीं डग शृंग महाचलों पे,
धरती-नभ-छोर मिलाती चलीं ।

हुआ सम्मुख उद्यत भूधर भी,
उसका सब स्वत्व मिटाती चलीं ।
कल कंठ से ऊर्मियों के वर-वाद्य पे,
निगुर्ण का गुण गाती चलीं ॥

[३]

शैशव को गिरि-गोद में बैठ के,
निर्झरों के सँग खेल बिताया ।
अंक में ले शिला-खण्ड असंख्य,
सदैव उन्हें महादेव बनाया ।

यौवन के क्षणों में कृषि-क्षेत्र में,
होके प्रविष्ट था रास रचाया ।
वृद्धता में जिससे बनी थीं ।
उसी में निज जीवन जा के मिलाया ॥

[४]

द्रवमान न पत्थर का उर होता,
जो सिन्धु में ज्वार-मरोर न होती।
प्रणयी फिर दो मिलते किस भांति,
अकिंचन पे कृपा-कोर न होती।

मिलती भला प्रेम की थाह कहाँ,
'पदमेश' असंख्य हिलोर न होती।
गिरि-सिन्धु का अन्तर एक न होता,
तुम्हारे प्रवाह की डोर न होती॥

[५]

प्रिय योग पे साधिका कोई है-
साधना का लिये बीड़ा, कहें कहो तो।
अथवा नभ से उतरी हुई अप्सरा की-
कल क्रीड़ा, कहें कहो तो।

तनसाजे दुकूल से कामिनी कोई-
भरी हुई व्रीड़ा, कहें कहो तो।
भय-ताप से पीड़ित जीवनदा की-
तुम्हें उर—पोड़ा कहें कहो तो॥

[६]

श्रुतियों का प्रभाव प्रकाशन हेतु,
लिखाया गया परिच्छेद है क्या ?
नभ-भार उठाये हुये गिरि है,
'पदमेश' वहा श्रम-स्वेद है क्या ?

जल-रूप में भूतलपे की गयी,
वर व्याख्या के साथ ही वेद है क्या ?
अथवा हुआ भासित भूतल पे,
ये अरूप-स्वरूप का भेद है क्या ?

वसंतागमन

कलियों को सुहाग-सिंदूर मिला,
अलियों को भरी रस-प्याली मिली ।
परिधान के रूप में नग्न हुये-
तरुओं को, गयी हरियाली मिली ।

पतझार से श्रीहत भूतल को,
छुटा स्वर्गिक मंजु निराली मिली ।
मधुमास को कोयल ऐसी प्रिया,
मधु—मादक घोलने वाली मिली ॥

[२]

निजपात-निपात से गौरव हीन,
बने तरु जीवन वाले हुये ।
कड़ी शीत से व्याकुल हो किसी भांति,
रहे निज अंग सँभाले हुये ।
मधु सौरभ संयुक्त फूलों को पा,
सभी अंक में ले मतवाले हुये ।
सुधा-धार से सींचने विश्व लगे,
जबसे मधु मास—हवाले हुये ॥

[३]

सुमनों के मनों में हुआ नव हर्ष,
सहर्ष स्व कोष लुटाने लगे ।
रस से परिसिक्त प्रमत्त बने,
मधुधार अजस्र बहाने लने ।
मधुपान से चेतना शून्य बने अलि,
जीवन—ज्योति जगाने लगे ।
बन मत्त पराग—अबीर उड़ा,
'पदमेश' कबीर सुनाने लगे ॥

[४]

सुमनों के प्रदीप से वाटिका-कक्ष,
सुगंध-प्रकाश से युक्त हुआ ।
अलिवृन्द पतंगों के प्राण-प्रदान का—
श्रीसर है उपयुक्त हुआ ।

मधुमास की वैभव-राशि मिली,
पतझार की झार से मुक्त हुआ ।
तरु बात की बात में फूल उठे,
वन-माली वसंत नियुक्त हुआ ॥

[५]

एक एक सुमन सुगंध—पिचकारी बने,
प्रकृति-परी से करते हैं रंग रलियाँ ।
पी के मधु-वारुणी लगा के अंग-अंगराग;
झूम उठीं मत वन मधुप—अवलियाँ ।

सरस समीर की हिलोर में पराग सनी,
उड़ रहीं सुमन-दुकूल सी तितलियाँ ।
आकर बसंत सब रंग ही बदल गया,
खिल उठीं कलियाँ, महक उठीं गलियाँ ॥

[६]

उठने लगीं हर्ष—हिलोरें सरो में,
समीर का पाकर स्पर्श नया ।
लिपटीं तरु—अंग लतायें लिये—
फल-कामना का महोत्कर्ष नया,

सुरा-स्वर्ण से युक्त हुईं कलियाँ,
अलियों को हुआ अतिहर्ष नया।
जड़ चेतन के, तन को, मन को,
हुआ जीवन-दा अब वर्ष नया॥

[७]

वन का तन नूतन होता कहाँ,
सुमनों में कभी मृदु हास न होता ।
रस राज का साज समाज न होता,
कभी भी हेमन्त का ह्रास न होता,

अलि—मंडली प्यासी सदा रहती,
उनका कभी हास विलास न होता।
ऋतुओं का नया इतिहास न होता,
बनाया गया मधुमास न होता॥

[८]

श्वाँस संपुटित कर, सुमन-ब्रह्माण्ड मध्य,
मधुर पराग की विभूति मले तन में।
करता प्रणय-प्राणायाम से पिपासा शांत,
गुन गुन अलि सा सुमन से स्व-मन में।
अगुण सगुण के स्वरूप में दिखाई पड़े,
करता सफल साधना निकुंज-घन में।
'पदमेश' विजय त्रिताप से प्रफुल्ल मन,
संत बन बैठा है बसंत बन-बन में॥

गंगाजी और खादी

बंधन से करती हैं विमुक्त,
विमुक्त ही व्यक्ति की हैं धन दोनों।
जीवन में नव-ज्योति जगातीं,
बनातीं पवित्र हैं जीवन दोनों।

सच्चे स्वराज्य की साधिका और—
जलातीं अनीति का हैं बन दोनों।
हैं अब तो यश की ये ध्वजा पे,
बनीं पहले किसी का प्रन दोनों॥

[२]

करतार की तत्त्व स्वरूपिणीं दोनों,
स्वरूप में एक ही साँचे ढली।
शुचि अंबर से धरा पे उतरीं,
मिली दोनों को भारत-भूमि भली।

'पदमेश' अछूत उधारने के लिये,
दोनों बनीं रहतीं पगली।
यश-गंध बिखेरने से न सुगंधित,
विश्व की, है हुई कौन गली॥

[३]

वह मोहन के पद से निकलीं,
इसकी बही मोहन के कर धारा।
पतितों की हैं आश्रय-दायिनी वे,
इसने कितने पतितों को उबारा।

इसे लाखों दिगम्बर धारे फिरें,
उन्हें एक दिगम्बर ने शिर-धारा।
उतरीं वह साठ हजार निमित्त,
बनी यह चालिस कोटि सहारा॥

[४]

दक्षिण दिशा के पति उनके हैं वादी यदि,
पश्चिम दिशा के पति इसके भी बादी हैं।
हरिजन दोनों के सदैव प्राण-प्रिय बने,
अमरावती की दोनों महिमा बढ़ा दी हैं।
इसने दिया है दासता को कड़ी चूरकर,
उन्होंने भी देश की कलुषता मिटादी हैं।
'पदमेश' शुचि गंगा नाम यदि उनका है;
इसका भी नाम लोग रक्खे शुद्ध खादी हैं॥

दीपकोक्ति

कर मैं न अनन्त प्रकाश सका,
कुछ तो तम की मनमानी गई।
यदि ले न सका फिर भी मुझसे,
गयी बस्तु मेरी पहचानी गई।

इतिहास के पृष्ठ पे स्वर्ण के अक्षरों में,
लिखी मेरी कहानी गई।
बुझने का मुझे अनुताप नहीं,
उपकार में मेरी जवानी गई॥

[२]

बुझने का मुझे अनुताप नहीं,
फिर से तम का अधिकार हुआ ।
'पदमेश' प्रकाशित कक्ष किया—
जिसका, इतना अनुदार हुआ ।

चरणों से विचूर्ण किया जिसको,
उसका प्रतिशोध प्रहार हुआ ।
बिठा अंक में पाला जिसे उसका,
उर-शोषण का व्यवहार हुआ ॥

[३]

क्षणमात्र के जीवन पे तम-राशि !
महातम का अभिमान हुआ ।
मेरी एक बुझी हुई ज्वाला से—
आज महाप्रलै का सु-विधान हुआ ।

रवि-रश्मियां नष्ट करेंगी तुझे,
अब चाहता प्रात महान हुआ ।
फिर दृष्टि में गोचर होगा नहीं,
'पदमेश' का तू जलपान हुआ ॥

[४]

फिर तो किसी कक्ष त्रिकोण में बैठ
हो सीमित, शक्ति से हीन बनेगा ।
नहीं दूर पराभव की घड़ियाँ,
जब आकर मेरे अधीन बनेगा ।

जिससे तू समादृत होता रहा,
उस दृष्टि में कौड़ी का तीन बनेगा ।
चरणों पे विलुंठित हो, शरणागत,
क्षीण तेरा तन पीन बनेगा ॥

[५]

कुछ तो उपकार अवश्य किया,
अपकार पे तूने अगण्य किया ।
रहा शोषक जो अपने गृह का,
उसको तुमने अग्रगण्य किया ।

कभी क्षम्य न होगा मेरे अधिराज में,
जो अपराध नगण्य किया ।
रहा नन्दन कानन सा जो कभी,
उसे निर्जन और अरण्य किया ॥

महात्मा गाँधी

बिषम व्यवस्था को समाप्त करने के लिये,
'पदमेश' नूतन विधान बन आये तुम।
धर्म पे अटल हो बिसर्जित स्व-प्राण किये,
बलि-दान सम बलिदान बन आये तुम।
जन्म भूमि अपनी स्वतन्त्र करने के लिये,
शक्ति का महान बरदान बन आये तुम।
स्वार्थ-रत सत्य औ अहिंसा के विरोधी—
सभी मानवों के लिये भगवान बन आये तुम॥

[२]

परतंत्रता की शृंखलों में जकड़ा था देश,
क्लेश था विशेष अपना भी बना अन्य था।
जिसके करों में देश-शासन-व्यवस्था रही,
वह बना स्वार्थ का उपासक अनन्य था।
देश का सुधार देश-द्रोह कहलाता रहा,
कितना विचार यह पूर्ण अहमन्य था।
देख यह एकता अहिंसा का प्रकाश लिये,
आये तुम, वह तिथि और दिन धन्य था ॥

महात्मा तुलसी दास

तुलना की तुला पे असंख्य बार तौले गये,
सिद्ध हुये सबसे अकेले तुम्हीं बढ़ के।
भाषा-प्रतियोगिता में हिंदी चमकाती भाल,
तुम्हीं त विजेता हुये विश्व-भाषा-गढ़ के।
'पदमेश' पार अगणित भवसिन्धु हुये,
रचित तुम्हारी काव्य-तरणी पे चढ़ के।
कवि महाकवि और भक्त भगवान हुये,
लिखित तुम्हारी एक एक पंक्ति पढ़ के॥

[२]

भक्ति-भावना के सिंधु बीच तुम कूद पड़े,
मुक्ति को बिखेरने प्रत्येक गृह धाम में।
आज भी चकित है प्रत्येक व्यक्ति जानकर,
तुम्ही एक सोधा पथ जिसे मिला वाम में।
हो गये अमर तुम पीकर स-हर्ष जिसे,
मिल गयी सुधा तुम्हें विष-मय काम में।
'पद्मेश' आज तक ज्ञात यह हो न सका,
रामनाम तुममें कि तुम रामनाम में॥

[३]

यद्यपि असंख्य भक्त साधक अनन्य हुये,
विजयी महान तुम्हीं हुये इति अथ पर।
भव सिंधु-तरणी बनाये धरणीं पे तुम,
शुचिता दिखाई निज जीवन अकथ पर।
चल चुके, चलते रहेंगे, चलते हैं आज,
चल पड़े तुम जिस भक्ति-मय पथ पर।
खोल मुक्ति -द्वार जा अनन्त में विलीन हुये,
'पद्मेश' चढ़कर राम नाम-रथ पर॥

[४]

भव-त्रय पीड़ितों को राम चरितामृत दे,
बंधन-विमुक्त किये मोह-पाश तोड़ कर।
प्राप्त सबको है, न समाप्त हो कभी भी वह,
'पदमेश' गये ऐसे रत्न-राशि छोड़ कर।
वेद और शास्त्र का समस्त तत्त्व भाग लिये,
मानस में भर दिये तुम हो निचोड़ कर।
श्रद्धा का सुमन हैं चढ़ाते भगवान मान-
अगणित, संत ! युगकर जोड़ जोड़ कर॥

[५]

भाल पे देके सुहाग की विन्दी,
बने तुम नागरी के नव नायक।
हो न सका अब भी तुम सा,
वर दायिनी की वर वीणा का गायक।

हो रहा था 'पदमेश' विनाश,
बने तुम आकर स्वत्त्व विधायक।
संस्कृति का नभ था तम—पूर्ण,
विनष्ट किये वन ज्योति के शायक॥

चौरीचौरा

[१]

आततायियों के वक्ष मध्य भोंक भोंक भाला,
एक बार देश-मान तुम्हीं ने सँभाला था।
जितने थे मान के समान बेइमान बने,
उन पक्षपातियों का मुख किया काला था।
शासन निरंकुश था कुश-अग्र ऐसा तीक्ष्ण,
वज्रपात भीषण से नष्ट कर डाला था।
अत्याचार-सिन्धु में विलुप्त हुआ 'पद्मेश',
सुन्दर स्वतन्त्रा का रतन निकाला था॥

[२]

प्रतिशोध भावना की भीषण बवंडर से;
शासन-शिला का एक कण भी न शेष था।
त्रसित समस्त अधिवासी, हो विक्षुब्ध गये,
देश-अपमान का सभी के उर क्लेश था।
सत्ता के विनाश की यही है एक पुण्य वेला,
उस काल सभी का प्रलय-कारी वेश था।
दासता की होलिका जलाने हेतु 'पदमेश'
एक बार यहीं से मचल पड़ा देश था॥

[३]

जल उठी मानस में क्रांति की ज्वलंत-ज्वाला।
लपटों में जिसके विनाश की लहर थी।
जय बोल बोल खोल खोल सीना आगे बढ़े,
रोष के पसीने से सभी की देह तर थी।
अधिकारियों पे अधिकार की यही है वेला—
यही है यही है यहीं गूंज घर घर थी।
बढ़े चलो, बढ़े चलो, छीन लो स्वतन्त्रता को,
रुकने की बात उस क्षण में जहर थी॥

[४]

एक एक कर में असंख्य असि बल हुआ।
एक ललकार में प्रलय का विधान था।
एक एक नेत्र था त्रिनेत्र सा बिनाशकारी,
देख लिया जिसे होता कंठ गत प्रान था।
जीत लेगा एक एक व्यक्ति ही समस्त विश्व,
किसी व्यक्ति को भी देख होता यही भान था।
श्वासों में असीम ज्वाला मुखी उदगार भरा,
वाणी में ध्वनित वलिदान बलिदान था॥

[५]

देश उपकारी खींच खींच हाथ मारता था,
रहा जो विदेशी-उपकारी मुड़ा जाता था।
दासता-निशा का पकड़े था छोर आज,उसे—
यमलोक भेज, आगे बढ़, छुड़ा जाता था।
उन्हीं द्रोहियों का रक्त पान कर भरपेट,
हीतल महीतल का खूब जुड़ा जाता था।
'पदमेश' प्रबल विपक्षियों का पक्षी-प्राण,
बड़ी शीघ्रता से नभ ओर उड़ा जाता था॥

[६]

किन्तु क्या बताऊँ नई बात नहीं सर्वदा से,
चन्द जयचन्द मातृ—कोख लजवाते हैं।
डाल काल-गाल में असंख्य मूल्यवान लाल,
आँसू न बहाते हाय खुशियाँ मनाते हैं।
खाते जिसका हैं जिस अंक में सदैव सोते,
उसी जननी पे विष-वाण बरसाते हैं।
फिर भी लजाते न, दिखाते हैं कलंकी मुख,
चिल्लू भर पानी में न उल्लू डूब जाते हैं॥

[७]

जिसका सुहाग देश-हित हेतु धोया गया,
शतबार उस धुले भाल को प्रणाम है।
पुत्र मृत्यु पर जो खुला, न बँध पाया अभी,
शतबार उस खुले बाल को प्रणाम है।
जिसने जवानी देश-हित पे मिटायी यहाँ,
आज शतवार उस लाल को प्रणाम है।
जिसने स्वतंत्रता पे हमें ललकारा उस—
सन् उनीस सौ इकीस साल को प्रणाम है॥

दीपक !

अन्योक्ति

दलता नित दीन पतंगों को तू,
स्वयं बंधन में जकड़ा हुआ है।
हुआ बाहर वायु ने नष्ट किया,
फिर क्यों इतना अकड़ा हुआ है।

द्युति विद्युत की गति देख अरे!
अभी तू कितना पिछड़ा हुआ है।
यह तेरा प्रकाश का दान है व्यर्थ,
अँधेरे में आप पड़ा हुआ है॥

[२]

यह तेरा प्रकाश नहीं है प्रदीप,
पतंगों की जीवन-ज्वाला जली।
उन्हीं प्रेमी पतंगों की आहें हैं ये,
यह धूम-शिखा नहीं है निकली।

यह वर्तिका तेल के आगम की नहीं,
शोषण अर्थ लगी है नली।
पथ-दर्शक और की दृष्टि में तू,
मम दृष्टि में किन्तु महान छली॥

प्रभात-प्रकाश

अवसान किया रजनी का दिनेश ने,
प्राची दिशा पर डाल के डेरा।
कर नष्ट अँधेरा समस्त किया,
प्रति ओर लगा कर-जाल का घेरा।

नवजीवन देकर विश्व को मानवों का-
फिर से दिन आकर फेरा।
तम-सिन्धु में मग्न से प्राणियों को,
'पद्मेश' मिला जल-यान सबेरा॥

[२]

अब ऊषा-वधू के अलंकृत भाल की-
रश्मियाँ फूटना चाहती हैं।
तम के गल-हार की तारक-मालिका,
शीघ्र ही टूटना चाहती हैं।

रवि-पारस स्पर्श से सारी दिशा,
पट-स्वर्णिम लूटना चाहती हैं।
निशि में उर-कंज की बंदी बनी-
भ्रमरावली छूटना चाहती हैं॥

[३]

तारक वृंद सदस्य, सभापति चन्द्र-
का नष्ट समाज हुआ है
श्याम बना शिरोभूषण था-
जिसका, वह स्वर्ण का ताज हुआ है।

नृत्य रही करती रजनी,
उसका अब विकृत साज हुआ है।
दीप्त दिशायें समस्त हुईं,
अब तो दिन राज का राज हुआ है॥

[४]

नभ के प्रति कोण में होता प्रकाश-
कहाँ से, जो ऊषा-सुहाग न होता।
अनुरंजित होतीं दिशायें नहीं,
'पदमेश' का जो अनुराग न होता।

बनता कभी जीवन कार्य का क्षेत्र न,
नींद के पाप का त्याग न होता।
फिर पुण्य-प्रभात ही होता कहाँ,
यदि प्राची दिशा का प्रयाग न होता॥

पपीहा-पुकार

पीकहाँ पीकहाँ कातर कंठ से,
सैकड़ों बार पुकार चुका हूँ।
प्रेम की तेरी अनन्यता में अपना-
तो सभी कुछ वार चुका हूँ।

होकर तन्मय साधना में सह-
पाहन का भी प्रहार चुका हूँ।
हार चुका तुम जाना करो,
पर मेल गले जय-हार चुका हूँ॥

[२]

मुझको हन पाहन से तुम मेरा,
मिला रहे जीवन धूल में हो।
चिनगारियाँ बूँदों की डाल के आग,
लगा रहे अंग-दुकूल में हो।

असि-विद्युत से रहे वार असंख्य-
चला तुम पक्ष के मूल में हो।
व्यवहार का ऐसा प्रहार अनन्य पे,
सोच लो क्या नहीं भूल में हो॥

[३]

मान ही जाते कहीं क्षणमात्र,
अनन्य मेरी मनुहार न होती।
प्रेम-प्रयुद्ध विजेता बनूँ,
यह चाह न होती तो हार न होती।

प्राणों में पीड़ा न होती तो-
आँसुओं की बहती युग धार न होती।
अंतर में लगी आग न होती-
तो पी कहाँ मेरी पुकार न होती॥

[४]

सहयोगी तुम्हारे दयार्द्र हो बूँदें-
असंख्य प्रदान मुझे करते हैं।
यह देख तुम्हारी कृतघ्नता, आँसू-
सदा उनके दृग से झरते हैं।

पर मेरे लिये दया व्यर्थ ही होती,
नदी सर शुष्क भले भरते हैं।
विष से जिन्हें जीवन है मिलता,
विष चाहते वे सुधा से मरते हैं॥

[५]

पाहन क्या, यदि वज्र से मारदो,
अन्य की पे कभी चाह न होगी।
कष्ट असह्य सहूँगा पे जानलो,
आहों के साथ कराह न होगी।

निष्ठुरता की तेरी लगे थाह,
पे मेरी अनन्यता—थाह न होगी।
हूँ चलता जिसपे, चलता रहूँगा,
कभी दूसरी राह न होगी॥

[६]

प्रेम की धार विशुष्क न होगी,
सदैव उपासना का प्रण होगा।
मृत्यु के बाद भी अंग का जो,
'पदमेश' असंख्य मेरे कण होगा॥

योनि में जन्म किसी भी मिले,
पर पी कहाँ का उच्चारण होगा।
साधना होती न व्यर्थ कभी,
मिलने का कभी न कभी क्षण होगा॥

स्त्री-स्तव

अवतार अरूप का होता कहाँ,
यदि रूप की रेखा तुम्हारी न होती।
सुख स्नात न मानव होते कभी,
तुम्हें जीवन की व्यथा भारी न होती।

उगता कहाँ प्रेम-का अंकुर तेरी—
विनिर्मित अन्तर-क्यारी न होती।
'पदमेश' न सृष्टि में होता प्रवाह,
बनाई गयी यदि नारी न होती॥

[२]

कभी पौरुष में फिर आता न प्राण,
लगी तुम्हें प्रेम की गोली न होती।
'पदमेश' की वाम न होती घरों में,
तुम्हारी धरा पर टोली न होती।

फल सौख्य में होता भरा विष-बीज,
सुधा-मयी सुन्दर बोली न होती।
नव जीवन-उत्सव होता कभी न,
जली यदि यौवन-होली न होती॥

[३]

वशीभूत न होते कभी नर-देव जो—
माया तुम्हारी विचित्र न होती।
गृहशून्य सुवास से होता सदैव,
तुम्हारी बनी छवि इत्र न होती।

'पदमेश' विनिर्मित सृष्टि की पुस्तिका,
दृष्टि में विश्व सचित्र न होती।
अभिनन्दन वंदन छाया का होता न,
काया तुम्हारी पवित्र न होती॥

[४]

बढ़ पाता न उन्नति के पथ पे,
'पदमेश' सुधार में हाथ न होता।
अरुणोदय होता न पौरुष का,
नरों के समानान्तर साथ न होता।
सदाचार की जाह्नवी होती विशुष्क
पवित्र-चरित्र का पाथ न होता!
हुई होतीं विपूज्या प्रत्येक गृहों में-
तो देश हमारा अनाथ न होता॥

[५]

विश्व की धारा का श्रोत न होता,
कहीं फिर हर्ष-विषाद न होता।
योग की होती निशा न कभी भी-
प्रतीक्षा में ऐसा सुस्वाद न होता।
सम्पति प्राण को होम दिये सभी,
ऐसा प्रसिद्ध प्रवाद न होता।
सृष्टि की व्याख्या न होती, दृगों से-
जो अन्तर का अनुवाद न हो ।

[६]

पान वचनामृत करातीं मुख—चन्द्र से हैं,
श्रम का महानतम हरतीं हैं नारियाँ।
जन्मभूमि होकर उठातीं भगवान-भार,
'पदमेश' अंक ले विचरतीं हैं नारियाँ।
कुसुमित स्वर्ण की लता है बन जाती जब,
बालक समोद अंक भरतीं है नारियाँ।
गृह-वाटिका में दिन रात रात-रानी बन,
छवि से सुगंध-पूर्ण करती हैं नारियाँ॥

भिखारी

जर्जर अंग में वर्वरता की निशा का—
घिरा तम देखलो देखलो।
अस्थियाँ केवल हैं अवशेष,
कराहता है दम देखलो देखलो।

श्वासों के तार से दे रहे तार,
प्रहार है निर्मम देखलो देखलो।
शोषण-क्षेत्र से मारा हुआ,
जिसको लगा है बम देखलो देखलो॥

[२]

उजड़े हुये जीवन की मरुभूमि पड़ी—
यह सामने देखलो देखलो।
ठटरी यह शोषण-बाण की मारी,
खड़ी यह सामने देखलो देखलो।

जले अंग में भूख की ज्वाला से आँखें गड़ीं,
यह सामने देखलो देखलो।
कुछ बाबू मिले कहते लगी अश्रु-झड़ी,
यह सामने देखलो देखलो॥

[३]

दुख दैन्य से जीवन की कड़ियाँ,
निःशक्ति हो ढीली पड़ी हुई हैं।
जलती उर में अरमान-चिता,
इसी से नसें नीली पड़ी हुई हैं।

बहने से निरन्तर अश्रु प्रवाह के,
आँखें हो गीली पड़ी हुई हैं।
तन-वृक्ष में कष्ट त्रिताप से,
अंगों की पत्तियाँ पीली पड़ी हुई हैं॥

[४]

रही संसृति वस्तु न पास कोई,
बँधा टूक में केवल चावल चार है।
अवशेष रहा बस माँगना खाना,
विशुष्क हुई सभी जीवन धार है।
पहले धनिकों के शिकार हुये,
अब क्षुत की व्याधियों का अधिकार है।
अब दुष्कर श्वास का लेना हुआ,
अरे पोषको ! ऐसा तुम्हारा प्रहार है॥

[५]

अधिकारकी गोलियोंका जो शिकार हुआ,
निःप्राण यही तन है।
जिसकी हरी सम्पत्ति सारी गई,
यह देता प्रमाण यही तन है।
अपना सरवस्व दे सम्मुख हो खड़ा,
चाहता त्राण, यही तन है।
निज रक्त से जीवन दान दिया—
जिसने, म्रियमाण यही तन है॥

[६]

अपने गिरने इनके उठाने का,
निमन्त्रण पत्र इन्हें तुम मानलो।
इनकी यही अस्थियाँ होंगी दधीचि की-
अस्थियाँ, खूब इन्हें पहचानलो ।

अब होगी भविष्य में कैसी दशा,
इसका अभी से ही लगा अनुमान लो।
इस ऊँचे प्रासाद पे शीघ्र यही-
करेंगे अधिकार इसे तुम जान लो॥

दीपकोद्गार

स्वार्थ की शून्य अमा में—
भयंकर हो रहा मेरा विनाश तो देखो ?
मानस में फिर भी कितना भरा स्नेह,
मेरा उराकाश तो देखो।

त्याग पे हो बलिदान पतंग—
गये, मेरे प्रेम की प्यास तो देखो।
मैं जलता हूँ, मुझे जलने दो,
पे दर्शको ! मेरा प्रकाश तो देखो॥

अन्योक्ति

[२]

उर स्नेह में डूबी हुई यह वर्तिका,
शोषण पे इतनी तुली है।
निज स्वार्थ की सिद्धता में अनुरक्त है,
रक्त निमित्त मिली जुली है।

बलिदान असंख्य पतंग हुये,
रही देखती पे न हिली डुली है।
मुझे ज्ञात न था, मुझे ज्ञात न था,
अब जाकर आँख मेरी खुली है॥

[३]

शाप को मानता जीवन जो,
उसको वरदान का मान क्या होगा।
और की वृद्धि को देता महत्व उसे—
अपना अभिमान क्या होगा।

दास्य को मुक्ति है जानता जो,
उसको अपनत्व का ध्यान क्या होगा।
जो तम-ताल पे नाच रहा,
उसे मेरे प्रकाश का ज्ञान क्या होगा॥

[४]

दिया जीवन का वरदान जिसे,
उसे अंत में शाप बना दिया आकर।
शरणागत से बना शासक, शोषण—
कार्य-कलाप बना लिया आकर।

जिसे मेटने में पड़ेगा मिटना, मुझपे—
वह छाप लगा दिया आकर।
चरणों पे विलुंठित होकर,
पुण्य का अर्थ ही पाप बना दिया आकर॥

[५]

कर शक्ति का पूर्ण समन्वय,
शोषकों का अपने मुख मोड़ सकूँगा।
तम को रहने कहीं दूँगा नहीं,
बस पैरों के नीचे ही छोड़ सकूँगा।

श्रम-साधना से कर शोषण रुद्ध,
तभी कुछ गांठ में जोड़ सकूँगा।
निज विश्व को पूर्ण प्रकाश में-
लाकर ही अपना दम तोड़ सकूँगा॥

घनश्याम !

कुछ स्वत्व न ज्ञात तुम्हें अपना,
बन ऐसे अनन्य विभोर चले।
घनश्याम ! किये तन श्याम समस्त,
भरे जल से दृग-कोर चले।

प्रिय दर्शन-वायु से प्रेरित हो,
उठा मानस बीच हिलोर चले।
निज अंग-पतंग को प्रेम की—
डोर में बाँधे अनंत की ओर चले॥

[२]

रवि-चन्द्र की ज्योति से अंतर पूर्ण,
वियोग में पे तुम काले पड़े।
विरहाग्नि के आतप से जल के,
नभ अंग में तारक-छाले पड़े।

तप-साधन में तन देते गला,
किस निष्ठुर के तुम पाले पड़े।
तुम से हो असंख्य असीम अमाप की–
माप को मापने वाले पड़े॥

[३]

रहने चुप चाप न पाते कभी,
मिली शांति तो आंसू बहाना हुआ।
सदा वायु—प्रसंग से आयु समस्त,
अ-स्थिरता में बिताना हुआ।

जब से बँधे जीवन बंधन में,
तब से यह ठोकरें खाना हुआ।
बन के 'पदमेश' त्रिशंकु तेरा,
धरती-नभ बीच ठिकाना हुआ॥

[४]

खंड खंड होते हो अखंड की उपासना में,
किन्तु मिलने के लिये 'पदमेश' जुड़ते।
होकर विरत किन्तु रहते वि-रत बने,
होते न निराश बार बार हो बिछुड़ते।
कभी तो अदृश्य छवि देखने अदृश्य होते,
असमर्थ होते, फिर अथ ओर मुड़ते।
गात्र हो गलाते क्षण मात्र न विराम लेते,
दर्शनाभिलाषा में अनन्त ओर उड़ते॥

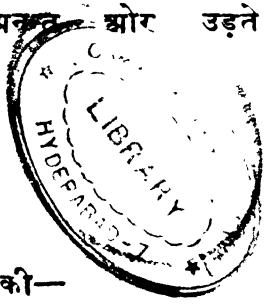

[५]

अभी क्या दिन दूर नहीं जब लक्ष्य की—
खोज में होना अलक्ष पड़ेगा।
गिरि-शृंग महान किये पथरुद्ध,
तेरे 'पदमेश' समक्ष पड़ेगा।

कभी ठोंकरें खा बहा अश्रु का सागर,
रिक्त हो खोना भी अक्ष पड़ेगा।
तब भी यह संभव है तुमको,
दिखलाई न सन्मुख लक्ष पड़ेगा॥

[६]

फिर भी जो अनन्य उपासक हैं,
उनके लिये योग वियोग समान है।
तुम जैसे अनेक वने उदभ्रांत,
बना इस विश्व का ऐसा विधान है।

अणुमात्र भी साथ न देता कभी रहता–
सदा मित्र सदा अनुमान है।
मृग मीन पतंग सा देदो स्वप्राण,
सनेह तो लेता यही बलिदान है॥

विधवा-विलाप

यौवन—ज्योति विनष्ट हुई,
तन के बन में लगी आग निराली।
रुद्ध सनेह का द्वार हुआ,हो—
विरुद्ध गया विधि क्रूर कुचाली।

सुन्दरता की सुगंध गयी उड़,
सोन जुही हुई नागिन काली।
योग को छोड़ वियोग मिला,
अब श्याम हुई मुख मंजु की लाली॥

[२]

अनुराग से अंतर शून्य हुआ,
अब शून्य की साधना वाली हुई।
परिवार का वार असह्य हुआ,
प्रति बात प्रयोग की गाली हुई।

मेरी ज्योतित यौवन की घड़ियाँ—
हैं अमावस की निशा काली हुई।
जिसमें सुमनों का विकास न हो,
परिशुष्क औ निष्फल डाली हुई।

[३]

हो निवास वियोग की विद्युत का,
वह पावस की निशा काली हुई।
कुछ बोल ही जीवनाधार बना,
जिसका वह काक की पाली हुई।

न जले क्षण मात्र भी जीवन-दीप,
सनेह से शून्य दिवाली हुई।
पति-घाली हुई पतिघाली हुई,
विधि-घाली हुई घर—घाली हुई॥

[४]

मिट भाल की स्वर्णिम रेख गई,
अरे-रूप की होली जली हुई देखलो।
'पदमेश' विकास विहीन वनस्थली-
की अब शुष्क कली हुई देखलो।

जिसमें न बहे अब जीवन-धार-
कभी वह सूखी नली हुई देखलो।
जिसमें चलना महापाप हुआ—
वह कर्दम युक्त गली हुई देखलो॥

[५]

किंचित भी हमें ज्ञात न था,
वरदान ही आ अभिशाप बनेगा।
स्वप्न में भी अभिलाषा न थी—
जिसको, वही कार्य कलाप बनेगा।

जीवन-धार में छोड़ हमें,
क्षण मात्र में माप अमाप बनेगा।
रक्षक भक्षक सिद्ध हुये,
अब पुण्य हमारा भी पाप बनेगा॥

[६]

होकर सजग जग देखता हमारी ओर,
किंचित भी चित्त न हमारा कहीं चल जाय।
होंगे न दयार्द्र कभी देख हा! हमारी दशा,
आँसुओं का सिंधु ही दृगों से भले ढल जाय।
लाखों विधवाओं की विपत्तियों का होगा अन्त,
'पदमेश' यम सा नियम ही निकल जाय।
अथवा हमारी वेदना की चिनगारियों से,
हिन्दुओं! समाज की तुम्हारे होली जल जाय॥

दीपक !

प्रिय प्राणों से कौन सनेही प्रदीप,
सनेह में तो भी जला करते हो।
कर सारी दिशा में बढ़ाकर के,
मरते तक हाथ मला करते हो।

उस प्रेमी की बात तो दूर सदा,
जग का भली भाँति भला करते हो।
फिर आलय अंक में बैठे हुये क्यों ?
पतंग समूह दला करते हो॥

[२]

छिपी अन्तर-ज्वाला तुम्हारी प्रदीप,
प्रकाश के रूप में सामने आई।
बस प्रेम की तेरी अनन्यता ने ही—
सनेही की जीवन-ज्योति बुझाई॥

किस देव की मंजु उपासना में,
सरिता तप की यह तूने बहाई।
'पदमेश' तुम्हारी ही साधना से,
गृह की हुई सौगुनी है सुघराई॥

[३]

कभी खेलता चंचल वायु से तू,
कभी मौन हो साधक है बन जाता।
तम वाली निशा विषसी बनती,
यदि तू न प्रकाश-सुधा बरसाता।

'पदमेश' के अन्तर की अभिलाषा,
सदा जल के जग को बतलाता।
जिस जीवन की इति में नवजीवन आये-
वही मुझे जीवन भाता॥

[४]

मानस-नेह से पूर्ण है तेरा,
सनेह में तो भी जला करते हो।
ज्योति बिखेर बसुन्धरा पे,
मरते तक और भला करते हो।

कंज खिला रजनी-सर में—
जब ज्योति विकीर्ण कला करते हो।
क्यों फिर आलय अंक में बैठे—
पतंग समूह दला करते हो॥

पपीहा !

जीवन का दुख भूल के संसृति,
नींद की गोद में सो रही मौन है।
काम सदा जिसका चलना जब-
आलसी हो गया चंचल पौन है।

अर्द्ध निशा है दिशायें प्रशांत हैं,
बोलता क्यों बना वेदना-भौन है।
प्रीतम मेरे कहीं भी रहें बता-
'पी कहाँ' पूछने वाला तू कौन है॥

[२]

जलती हूँ वियोग की वह्नि में मैं,
नहीं जीवन-नौका किनारे पपीहा।
यदि होती सपत्नी न पूछती मैं,
उड़ती जहां प्राण हमारे पपीहा।

अरे बावले! जा उड़ जा उड़ जा,
हूँ सताई, न और सतारे पपीहा।
जब प्रीतम अंक में होंगे मेरे,
तब पूछना 'पी कहां' प्यारे पपीहा॥

आँखें

यौवन-वृक्ष के कुंज-किला में कभी—
बन कोकिला बोलतीं आँखें।
यद्यपि हैं चरणों से विहीन पे,
हैं थकतीं नहीं डोलतीं आँखें।

नाखुन हाथ कहां 'पदमेश' पे,
बन्द उरस्थल खोलतीं आंखें।
प्रेम-तुला पर मानवों का मन,
हैं निशि बासर तोलतीं आँखें॥

[२]

रसराज के बाग की होकर मालिन,
प्रेम की पौध हैं सींचतीं आँखें।
जग के उरतार को चुम्बक सी,
निज ओर सदैव हैं खींचतीं आँखें।

बनती हैं विचित्र सी चित्रिणी ये,
उर पे निज चित्र हैं खींचतीं आँखें।
कहीं दो से अचानक चार हुईं,
बस हैं रस-धार उलीचतीं आँखें॥

[३]

वेदना का विष बोतीं कभी, कभी—
जीवन में सुधा ढालतीं आँखें।
मृत्यु के पास कभी पहुंचातीं, कभी—
नव जीवन डालतीं आँखें।

मानस देतीं हिलोर कभी,
कभी अन्तर में चुभ सालतीं आँखें।
जीवन-सागर में घट स्नेह का,
डालतीं और निकालीं आँखें॥

[४]

रूप सुधा का करें रस पान,
बड़ी रसिका रस राज ही चाखें।
बानी विहीन पे अन्तर का सभी—
गुप्त रहस्य हो ज्योतिषी भाखें।

मूक हैं पे क्षण में 'पदमेश' सदा—
कहतीं उर की अभिलाखें।
देह नरेश की स्वामिनी हो, करें—
राज्य, सनेह भरी हुई आँखें॥

[५]

दो प्राणयी को सँयोग संदेश दे,
मानस देतीं हिंडोल हैं आँखें।
काम की मंत्र कटोरी बनी,
चित-चोर को लेतीं टटोल हैं आँखें।

दो दिलों के छिपे गुप्त रहस्य को,
देतीं सभी पर खोल हैं आँखें।
किंचित भी लगी ठेस वियोग की,
फूटतीं होके फफोल हैं आँखें॥

[६]

देतीं सदा कर व्यक्त स्वभाव,
रहस्य न किंचित भी छिपा रखें।
काजल की मसि आँसुओं का जल,
लेतीं मिला, लिखतीं अभिलाखें॥

अन्तरवृत्ति की पत्रिका को बन—
ज्योतिषी दो, क्षण में सब भाखें।
प्रेम पे पत्र लिखा करतीं, उर पत्र पे,
होकर लेखनी आँखें॥

परिचय

जिसने अभी यौवन देखा नहीं,
विधवा का लुटा वह भाल हूँ मैं।
न सनेह से सिंचित जो हो सका,
उस प्रेमी का शुष्क अराल हूँ मैं।

दृग फोड़ के देश निकाला हुआ—
जिसका वह भिक्षु कुणाल हूँ मैं।
जिसकी है स्वतंत्रता लेली गई,
उस वंदेनी माता का लाल हूँ मैं॥

सुमन !

अन्योक्ति

डाल डाल जीवन सदैव दिये जीवन जो,
उन्हीं मालियों से सर कलम कराओगे।
जिसने सुलाया निज अंक में सदैव तुम्हें,
सूखे पत्र चाँटे कल उनके ही खाओगे।
अंक में बिठा के जिन्हें रस का कराया पान,
उन्हीं भ्रमरों को कल खोजे नहीं पाओगे।
जिन 'पदमेश' किरणों से तुम फूले रहे,
ताप से उन्हीं के गात अपना जलाओगे।

दीपक !

अंतर में ज्वाला जलती है जो विशेषतम,
उसे बुझा लेने को पतंग जलता है यदि।
जलने दे, जीवन का पथ है पवित्र यह,
चलने दे, जीवन जला के चलता है यदि।
भरले सनेह और, अति-रिक्तता के भय,
भय—भीत बनकर कर मलता है यदि।
अग्नि-अंक सोने दे, सहर्ष 'पदमेश' उसे,
तेरी-प्रेम-ज्वाला पालने में पलना है यदि॥

दीपावली !

रहा रंक सदैव जो जीवन में,
क्षणमात्र हुआ अभिषेक तो क्या ?
तमपूर्ण जो कक्ष रहा उसमें,
घड़ी दो जला दीप अनेक तो क्या ?

गृह शून्य है जीवन-वस्तुओं से,
उसे अर्चना का न विवेक तो क्या ?
तमसावृत जीवन में यदि तेरा,
प्रकाश हुआ दिन एक तो क्या ?

अप्सरा-अवतरण

तान के तान-वितान धरा पर,
है अधरामृत पान कराती।
रूप की रश्मि से अन्तर-आँगन,
ज्योतित है 'पदमेश' बनाती।

विश्व-विमोहित के हित मानस में,
स्वर की ध्वनि-ऊर्मि उठाती।
सृष्टि पे वृष्टि सुधा करती,
वसुधा पर है चली अप्सरा आती॥

आशीर्वाद

तुमसे प्रगति सभ्यता की हो महानतम
रहो अनुयायी बने निज भाषा-भेष के।
भार परिवार का सँभालने में 'पदमेश',
डट जाओ हर्ष से समान तुम शेष के।
आपदायें आप दायें बायें से खिसक जायें,
देखकर तुमको विपक्षी बने क्लेश के।
गुरुगण देते यही आशिष सहर्ष सदा
ज्ञाता बनो विश्व के विधाता बनो देश के॥

तिमिर-ज्योति

वैभव - पूर्ण है मेरा भुभुक्षित-
ऐसा, कुबेर का कोष भरेगा।
शांति में मेरी अशांति की अग्नि है—
ऐसी, विपक्ष का पक्ष जरेगा।

योग में मेरे भरा सहयोग,
जो मानवों का दुख सारा हरेगा।
मेरे अँधेरे में ऐसा प्रकाश—
जो विश्व को ज्योति से पूर्ण करेगा॥

प्रेम-परिभाषा

मुख मोड़ लो स्वत्व-विनाश को देख,
किये उर को शत टूक चलो।
किसी और की मान्यता सामने हो,
मत बोलो उठाकर हूक चलो।

पथ पे कितना दुख झेलना हो,
न रुको क्षणमात्र अचूक चलो।
परिभाषा यही बस प्रेम की है,
निज भाषा बनाकर मूक चलो॥

आत्म निवेदन

परमार्थिक कष्ट प्रभंजन ने,
जब जीवन-धारा हिलोर दिया।
तब दुर्गम द्वार दयानिधि का,
हमने झट से झकझोर दिया।

यह देख सहायकों ने मेरे आके,
सहायता का बढ़ा छोर दिया।
दुख लक्ष का था, शत लक्ष अलक्ष ने,
डाल मेरी झट ओर दिया॥

मुक्ति-साधन

बंधन-विमुक्ति का विधान रचती है नित्य,
शृंखला में पड़ी जनता की समाकुलता।
शोषण के पाप का कलंक तो सदैव ही से,
प्रतिशोध वरवारि से है आया धुलता।
शोषित शरीर का न व्रण भर पाती कभी,
'पदमेश' शोषकों के पुण्यों की बहुलता।
क्रांति के अँगारों से है जीवन नवीन होता,
मौन-साधने से मुक्ति-द्वार नहीं खुलता॥

मेरे दयाकर !

वासना के विष से घट पूर्ण है,
त्याग की यष्टिका से इसे फोड़ दो।
साँस की साँसति हो रही है,
निःश्वास बना निःश्वास से जोड़ दो।

अन्तर-वस्त्र प्रलोभन-वारि से सिक्त,
संतोष-करों से निचोड़ दो।
जीवन-मृत्यु की शृंखला मेरी,
दयाकर, मेरे दयाकर ! तोड़ दो॥

पुनरावर्तन

ध्यान गया पुनरावृत्ति का,
बनी चेतना दण्ड की यात्रा हमारी।
दी भुलवा गुरु ज्ञान असीम,
असीम प्रलोभन-मात्रा हमारी।

पाठ कुकर्म लगी पढ़ने, जबसे-
यह जीविका-छात्रा हमारी।
हो गई है अनिवार्य इसीलिये,
जीवन-मृत्यु की यात्रा हमारी॥

प्रत्यावर्तन

होती न जीवन की पुनरावृति,
वित्त का विस्तृत घेरा न होता।
मृत्यु के लोक में होता निवास न,
वासना-श्वास का फेरा न होता।

साम्य का होता अनंत-प्रकाश,
विनाश का व्यर्थ अंधेरा न होता।
विश्व के सारे प्रपंचों से आज-
भरा हुआ जीवन मेरा न होता॥

[२]

ज्ञान-महामणि होती, विकार का—
सूचिका-भेद्य अँधेरा न होता।
उज्ज्वल चन्द्र सा होता भविष्य,
कु कालिमा-भूत का डेरा न होता।

भित्ति बनी धन-रूप की होती न,
बंधन वाला बसेरा न होता।
स्वार्थ का सूत्र घनेरा न होता-
तो जीवन का फिर फेरा न होता॥

वैषम्य (साम्य)

प्रतिकूल परिस्थितियाँ बना जीवन को-
अनुकूल दिया करती हैं।
निज शूलों से बेधतीं डालियाँ जो,
वही तो हमें फूल दिया करती हैं।

जिन भूलों से होती विनष्टता,
वे ही सुधार भी भूल दिया करती हैं।
मझधार में डालतीं जो लहरें,
वही तो हमें कूल दिया करती हैं।

[२]

मेरा महान महत्त्व मुझे, अपनत्त्व में,
व्याप्त नहीं करने दिया।
मेरी अपूर्णता ने मुझे पूर्णता—
का पद प्राप्त नहीं करने दिया।

मेरी अलौकिक आकुलता ने,
अलौकिकताप्त नहीं करने दिया।
बंधन ने भव बंधन मेरा, मुझे ही-
समाप्त नहीं करने दिया॥

संकेत

व्यवधान निरर्थक होंगे समस्त,
युगों का लगा भट भेरा न होगा।
जिस श्वास पे है विश्वास विशेष,
कभी उसका फिर फेरा न होगा।

बुझ जायगा प्राण-प्रदीप क्षणैक में,
ज्योति का पुंज घनेरा न होगा।
कर लेगी महातमाच्छादित ऐसा,
कभी फिर शीघ्र सवेरा न होगा॥

अहम्!

वासना के व्याज से चुकाते हम सारा ऋण,
तृण - सम जीवन को जानते महान हैं।
अज्ञता-महा भ्रमा में हम जितने हैं घिरे,
उतना ही जानते बड़े ही ज्ञान वान हैं।
चीर तम अंतर, प्राचीर लाँघ पाते नहीं,
बनते असीम शक्तिशाली बुद्धिमान हैं।
निज पंच तत्त्व का न ज्ञान 'पद्मेश' कुछ,
जानते पे अपने को हम भगवान हैं॥

मृगतृष्णा

भव के विभव की विभावरी में सोये हुये,
प्रतिदिन देखते असंख्य सौख्य सपना ।
रहते सुमन से प्रफुल्ल 'पदमेश' नित्य,
अधिकृत मान के असीम-कोष-कल्पना ।
भव-भीति से न भयभीत कभी होते हम,
क्षण क्षण सत्य मानते हैं निज जल्पना ।
करता विमुख जो उसी का मुख देखते हैं,
भ्रम-वश जबसे गँवाये स्वत्व अपना ॥

?

दान के निदान से मिटाते देह-रोग निज,
किन्तु नष्ट मृत्यु-मजबूरी नहीं होती है।
कितना भी सना है उपासना में यह मन,
वासना-निवास-औधि पूरी नहीं होती है।
करते पवित्र पुस्तकों का पाठ बार बार,
पूरी ज्ञान-पुस्तिका अधूरी नहीं होती है।
पुण्यों के प्रतीकों का सहारा लाख लेते हम,
फिर भी हमारी दूर दूरी नहीं होती है॥

[२]

डोर धन की, न रोक थाम कुछ कर पाती,
पातक का पानी आ रहा है वासना के द्वार।
गुरु गौरवी से हम रखते घृणा का भाव,
अपने ही हाथों तोड़ चुके पूज्य-पतवार
श्रुति से महत्व पूर्ण बातें सुन 'पदमेश',
गात्र में पुलक मिलने की होती बार बार।
सन्निकट तट के लगाना चाहते हैं, किन्तु-
जीवन की तरणी पहुँच जाती मध्य धार॥

मुक्ति-महत्व

वैभव की रज्जु से बँधे हैं ममता की खूँट,
तोड़ नहीं पाते लाख बार हैं मचलते।
जीवन का पथ कर पाते न समाप्त कभी,
तैलक-वृषभ से असंख्य बार चलते।
जाते हैं लिपट गीलेपट से अधिक और,
जितना निपटने निमित्त हैं सँभलते।
डूबे मृत्युलोक-महासिंधु में समस्त प्राणी,
पाते जो विमुक्ति वही इससे निकलते॥

ब्रह्म-दर्शन

कर विनियोग दृश्य देखता अदृश्य का मैं,
दूर कर आधि व्याधि-मीन मेख लेता हूँ।
सृष्टि का समस्त रूप त्रिकुटी-कुटी में देख,
उर-पत्र पर चित्र-अवरेख लेता हूँ।
मनोवृत्ति-लेखनी स्वभाव को बना के मसि,
गुण-गरिमा पे नित्य लिख लेख लेता हूँ।
केवल वियोग की विभूत अनुभूति-वश,
ध्यान-वायुयान से तुम्हें में देख लेता हूँ।

वास्तविकता

संसृति होती विचित्र न तो,
तन के पट त्याग का कष्ट न होता।
पेट का प्रश्न भयंकर होता न,
कोई कभी पथ-भ्रष्ट न होता।

यात्रा हुई अनिवार्य न होती
प्रकाश-महा तम स्पष्ट न होता
मृत्यु का झोंका न आता तो
जीवन मूल समूल विनष्ट न होता॥

उपदेशामृत

मैंने कहा तुमसे कितना, तुम
वैभव-प्रीति-समाधि को तोड़ दो।
जीवन--लक्ष्य महान बना
उसे एक अलक्ष्य दिशा पर मोड़ दो।

सत्य सनेह का सूत्र अटूट बना के-
अटूट के छोर से जोड़ दो।
छोड़ना चाहते जो तुमको
उनको उनसे पहले तुम्हीं छोड़ दो॥

वियोग-विभूति

अवधान अ-स्थिर ही रहता
बना पूर्ववत् जीवन का क्रम होता।
जलने का महातप-वेदना-अग्नि में
मेरा कहाँ पे व्यतिक्रम होता।

सहयोग न श्वास का पाते कभी फिर
ज्योति का पुञ्ज घिरा भ्रम होता।
मिलती न वियोग-विभूति हमें
कहाँ योग की साधना में श्रम होता॥

मनोभिलाषा

शांति के आश्रम में हो निवास
लगी हुई माया की हाट बढ़ा दो।
त्याग के अश्व अपूर्व पे नाथ!
हमें इकबार अवश्य चढ़ा दो।

श्वास-लगाम रहे कर में, औ-
उपासना-ऐंड़ का पाठ पढ़ा दो।
चेतना-चाबुक से हमें मार के
जीवन-क्षेत्र से आगे बढ़ा दो॥

भूल

संसृति सी कुलटा हम पा,
सदाचार-विचार गँवाकर बैठे ।
बंधन में हमें डालता जो,
'पदमेश' उसे अपना कर बैठे ।

मृत्यु नहीं मिलता चिरजीवन,
हाय वही विष खाकर बैठे ।
है उठना जहाँ से हमको,
'पदमेश' वहीं हम आकर बैठे ॥

मेरी पिपासा

साधना-मन्दिर का हो पुजारी,
स्व भावना को सदा भावना देता।
जीवन-मृत्यु की बंधन शृंखला,
टूटने की नव चेतना देता।

होता सँयोग महान वियोग की,
शोषित में कर वेदना देता।
मेरी पिपासा में ऐसा प्रकाश,
जो राका सदैव बना अमा देता॥

ज्ञान-प्रकाश

भव-वैभव के नभ को मुख ऊर्ध्व किये—
गिनता जब वासना-तारे।
कुछ भान सा होता अनंत मिठास—
भरी इनमें, लगते बड़े प्यारे।

सभी सौख्य के नीलम वस्त्र पे,
ज्योति के पिण्ड स्वरूप गये हैं सवारे।
'पदमेश' की प्राप्ति की सुस्मृति में,
छिपते सभी ज्ञान-प्रकाश के मारे॥

पश्चात्ताप

क्रांत त्रिदोष से होता न आज,
त्रिताप का ऐसा प्रताप न होता।
शासित दैन्य-ग्रहा तम से हो—
प्रवंचित हाय! मिलाप न होता।

पूर्ण से चूर्ण हुआ यदि होता न,
पागल ऐसा प्रलाप न होता।
मैं भी कभी यदि आप न होता तो—
अन्तर का अनुताप न होता॥

[२]

होकर विनत नत मस्तक समस्त होते,
विश्व रूपी मठ के महन्त कहे जाते थे।
अखिल भुवन के अखिल पुष्प खिल खिल,
झूमते थे अंक में, वसंत कहे जाते थे।
सृष्टि के प्रसार हित, सार से असार बने,
आज अथ हैं पें कभी अंत कहे जाते थे।
बार बार अंत से ही गौरव-विहीन हुये,
अन्यथा अनंत हम भी तो कहे जाते थे॥

तुम !

बनते अबोध तो सुबोध बन जाते कभी,
करते कभी तो ज्ञान-गरिमा का खेला हो।
साधना में निरत विरक्त बन जाते कभी,
बन के विरक्त लगा देते कभी मेला हो।
अगणित अंश निज अंश पे उठाते कभी,
निर्जन में बैठ दूर करते झमेला हो।
रहते सभी में, पे दिखाने को अनोखा स्वांग,
बनते गुरू तो कभी बन जाते चेला हो।।

[२]

तुम हो अरूप पे स्वरूप-स्वांग करते हो,
'पदमेश' जिससे अनेक झट एक हो।
यदि भ्रम-वश एक बार एक हो न सका,
तो द्वितीय बार कर देते अभिषेक हो।
सत्य-साधना से हो विभक्त भक्त हेतु जाते,
महादेव हो पे निज शिर देते टेक हो।
जिस भांति एक बन जाते हो अनेक से, तो—
उसी भांति बन जाते एक से अनेक हो॥

व्यर्थ अभिमान

मैं ममता-नग ओट में बैठ
कुम्हार का चक्र बना फिरता हूँ।
तत्त्व महत्त्व सनेह से शून्य हो,
केवल तक्र बना फिरता हूँ।

त्याग महा पथ सौम्य, कुमार्ग—
कुवृत्ति पे वक्र बना फिरता हूँ।
है निज पे अधिकार न किंचित,
पे सदा शक्र बना फिरता हूँ

मुक्ति-क्षति

संगति का फल पाये यही, हुई-
रुद्ध तुम्हारे यहां गति मेरी।
संभ्रम-ध्यान में मग्न हुये,
भ्रम-भौंर में जाके पड़ी मति मेरी।
संपति-साधन का है प्रभाव,
बची न तुम्हारे यहां पति मेरी।
जीवन के व्यवसाय में मुक्ति के-
लाभ की भारी हुई क्षति मेरी॥

नम्र निवेदन

अन्तर देश पे है तम-राज्य,
स्व-राज्य की सुन्दर ज्योति जगादो।
पाप से पूर्ण है प्राँत प्रत्येक,
स्व-पुण्य का आसन आके लगादो।

आये अनन्यता जीवन में,
वह धारा मेरे उर में उमगादो।
पीकर मैं फिर पी न सकूँ कुछ,
ऐसी सुधा 'पदमेश' मँगा दो॥

[२]

बांध प्रेम-बंधन में, बंधन-विहीन बना,
योग के प्रकाश से वियोग-तम हर दो।
वैभव की ज्योति का प्रकाश है क्षणिक देव,
दृश्य से अदृश्य विश्व बीच बना घर दो।
अब एक क्षण यहाँ रहना असह्य हुआ,
तुममें समाऊँ लगा ऐसा अब पर दो।
आयु का अभाव, वायु सम गतिशील मनु,
बाँध प्रेम-सूत्र में शिथिल इसे कर दो॥

अन्तर

अधिक अभाव से है तुममें प्रभाव भरा,
मेरी अभावुकता में दंड का विधान है।
तेरा अहमन्य सर्वमान्यता प्रतीक, किंतु–
मेरा अहमन्य अहमन्यता महान है।
अतिरिक्तता से तेरी सत्ता की महत्ता, किंतु–
मेरी अतिरिक्तता असीम अपमान है।
तेरी अभिव्यक्ति में विभक्ति है अनन्त छिपी,
मेरी अभिव्यक्ति तो विभक्ति का निदान है॥

मृत्यु-अभिलाषा

दे दो क्षमा दान, अभिमान चूर चूर हुआ,
अंतर में सरिता सनेह की उलीच दो।
मिट न सके जो महामाया के मिटाये, वह—
साधना की रेख बीच मानस के खींच दो।
श्रद्धा के सुमन से प्रफुल्ल मन मेरा करो,
करुणा-करों से सुखा कर्दम का कीच दो।
ज्योति महा ज्योति में अवश्य मिल जाये यदि,
रीझ कर देव मेरे लिये तुला मीच दो

मैं

पूर्ण न हो वसुधा पे कभी,
सभी मानवों की वह आस बना हूँ।
भूत-भविष्य के चिंतन से भरा,
जीवन का इतिहास बना हूँ।

पीकर जीवन वारुणी मैं,
इस संसृति का उपहास बना हूँ।
जो न बुझे भव-सागर पान से,
ऐसी भयंकर प्यास बना हूँ॥

वैपरीत्य-साम्य

बुद् बुद से इस जीवन पे,
अधिकार हमारा विचित्र हुआ है।
बंधन में हमें डालता जो,
'पदमेश' वही प्रिय मित्र हुआ है।

अंतर से हटा, मृत्यु हुई वहो-
चिंतन का प्रिय चित्र हुआ है।
पागल लोग मुझे कहते,
पर जीवन मेरा पवित्र हुआ है॥

यदि ?

मेरे चन्द्र ! अपनी कृपा की कौमुदी से तुम,
नष्ट अपराध का अँधेरा कर देते यदि।
ताप से त्रिताप के व्यथाकुल निशा में पड़ा,
शान्ति के प्रकाश से सबेरा कर देते यदि।
मानव हुये क्या व्यर्थ जीवन हो सारा हुआ,
शून्य में विलीन तन-घेरा कर देते यदि।
विश्व के प्रपंच से विमुक्त पंचतत्त्व होता,
वासना-विहीन मन मेरा कर देते यदि॥